बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 20-09-17

सावधानी जरूरी

संपादकीय

सरकार ने शेल या मुखौटा कंपनियों पर हमले तेज कर दिए हैं। एक ओर जहां 210,000 कंपनियों का पंजीयन समाप्त किया गया है और आगे की जांच के दौरान उनके बैंक खाते जब्त किए गए हैं, वहीं ऐसे संस्थानों से जुड़े करीब एक लाख लोगों को नाकाबिल करार दिया जा चुका है। कई कंपनी सेक्रेटरी और चार्टर्ड अकाउंटेंटों पर कर वंचना में मदद करने का आरोप लगा है, उन पर नजर रखी जा रही है। सरकार ने यह भी कहा है कि शेल कंपनियों के खातों से पैसे इधर-उधर करने में मदद करने का प्रयास करने वाले किसी भी व्यक्ति पर कार्रवाई की जा सकती है। अभी कुछ ही समय पहले पूंजी बाजार नियामक भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड ने कई सूचीबद्ध कंपनियों के परिचालन पर रोक लगाते हुए कहा था कि वे धनशोधन और कर वंचना का जरिया बनी हुई हैं। शेल कंपनी ऐसी कंपनी है जो कारोबार नहीं करती बल्कि वित्तीय गड़बडिय़ों को अंजाम देने के काम आती है। कई बार उसे भविष्य के किसी इस्तेमाल के लिए यूंही पड़ा रहने दिया जाता है। इन ठोस कदमों की निश्चित तौर पर सराहना की जानी चाहिए। शेल कंपनियों के विरुद्ध कार्रवाई को कतई गलत नहीं ठहराया जा सकता है। यह बात तो व्यापक तौर पर जानी हुई है कि कर प्रशासन की शिथिलता ने कई प्रवर्तकों को ऐसी कंपनियां बनाने का बल दिया जिनका कोई कामकाज नहीं है। इन कंपनियों का इस्तेमाल धन शोधन के लिए होता रहा है। कॉर्पोरेट व्यवस्था में ऐसी खामियों को दूर करना अत्यंत आवश्यक है। ऐसा करने से एक बेहतर वित्तीय माहौल तैयार होगा, जहां कर को लेकर धोखाधड़ी और अवैध गतिविधियों के मामले कम सामने आएंगे।

बहरहाल, सरकार को कॉर्पोरेट और व्यक्तिगत स्तर पर लोगों के खिलाफ केवल शंका के आधार पर एकतरफा फैसले लेने से भी बचना चाहिए। इससे निर्दोष भी प्रभावित हो सकते हैं। कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 164 को समाप्त करना तो विशेष तौर पर आवश्यक है जिसमें निदेशकों को अयोग्य करार देने की बात शामिल है। इसका इस्तेमाल सत्ता प्रतिष्ठान द्वारा अपने राजनीतिक विरोधियों को प्रताड़ित करने के लिए किया जा सकता है। दूसरी बात जो अधिक गंभीर है वह यह कि ऐसे एकतरफा प्रतिबंध निर्दोष लोगों पर असर डाल सकते हैं। उदाहरण के लिए सेबी ने बिना आरोप के प्रत्युत्तर का अवसर दिए कई कंपनियों के शेयर कारोबार करने पर प्रतिबंध लगा दिया। यह घटना शर्मनाक थी। सेबी के इस कदम की वजह से बाजार को झटका लगा। कई शेयरों के दाम धड़ाम हुए और कई वित्तीय संस्थानों और निवेशकों को निजी तौर पर नुकसान उठाना पड़ा। इसके बाद कई कंपनियों को लेकर सेबी ने अपना निणर्ाय बदला और माना कि उनके खिलाफ लगे आरोप आधारहीन थे। लेकिन इससे उल्लेखनीय नुकसान हो चुका था।

इसी प्रकार जिन निदेशकों पर रोक लगाई गई है उनमें से कई ऐसे होंगे जिनका फर्म की गतिविधियों से कोई लेनादेना नहीं होगा। हां, यह भी सच है कि कई कंपनियां आगे चलकर दोषमुक्त होंगी। परंतु उनकी प्रतिष्ठा को तो अच्छा खासा नुकसान हो चुका होगा। सरकार को यकीनन उन कंपनियों के खिलाफ कार्रवाई करनी चाहिए जहां गड़बड़ी के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। परंतु ऐसी कंपनियां और लोग पहले ही निगरानी में हैं। अधिकारियों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जब भी प्रतिबंध लगाया जाए तो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का पालन हो। स्वस्थ कारोबारी माहौल के लिए वह नितांत आवश्यक है। दूसरी दिक्कत यह है कि कंपनी अधिनियम में शेल कंपनी को स्पष्ट परिभाषित नहीं किया गया है। यानी किन गतिविधियों की बदौलत कोई कंपनी शेल कंपनी की श्रेणी में आती है। इसकी वजह से इसे अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया जा रहा है। इसमें भी जरूरी सुधार की आवश्यकता है।

दैनिक जागरण

Date: 20-09-17

कृषि संकट का समाधान नहीं कर्जमाफी

जीएन वाजपेयी, [लेखक सेबी और एलआइसी के पूर्व चेयरमैन हैं]

उत्तर प्रदेश में किसानों की कर्ज माफी के बाद दूसरे राज्यों में भी यह सिलसिला शुरू हो गया। पंजाब, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र आदि के बाद राजस्थान सरकार भी किसानों के लिए कर्ज माफी की घोषणा करने को बाध्य हुई। अतीत में भी कई बार ऐसा हुआ है। हालांकि यह बात अलग है कि इससे किसानों की हालत में कोई खास सुधार नहीं हुआ। कर्ज माफी से अनैतिकता को भी बढ़ावा मिलता है, क्योंकि औसत किसान यह सोचना शुरू कर देते हैं वे कर्ज चुकाए बिना ही उससे छुटकारा पा सकते हैं। इससे ऋण संस्कृति बुरी तरह प्रभावित होती है और कर्जदाताओं के बहीखाते भी बिगड़ जाते हैं। इसके अलावा केंद्र और राज्य सरकारों के खजाने की हालत भी खस्ता हो जाती है। कुछ समय पहले हुए एक अध्ययन के अनुसार कर्नाटक में प्राथमिक कृषि कर्ज सोसायटी यानी पीएसीएस की ऋण वसूली की दर 1987-88 में 74.9 प्रतिशत थी जो 1990 की कर्ज माफी के बाद 1991-92 में घटकर 41.1 प्रतिशत रह गई। ऋणदाता संस्थान किसानों को कर्ज देने से हिचकते रहे और आखिर में किसानों को कर्ज के लिए साहूकारों की देहरी पर गुहार लगानी पड़ी।

प्रधानमंत्री मोदी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उनकी सरकार का लक्ष्य अगले पांच वर्षों में किसानों की आमदनी को दोगुना करना है। कई अध्ययनों के अनुसार भारत में गरीबी उन्मूलन के लिए कृषि क्षेत्र में 2.3 गुना वृद्धि की दरकार होगी। वर्ष 1997 से 2014 के बीच भारत में कृषि क्षेत्र की औसत वृद्धि दर महज तीन प्रतिशत रही जो कि समग्र जीडीपी वृद्धि दर की तुलना में महज आधी ही है। ऐसी कमजोर वृद्धि मुश्किलों को दूर करने के लिए नाकाफी हैं। दरअसल इसी वजह से शहरी और ग्रामीण भारत के बीच विषमता की खाई और चौड़ी होती जा रही है। किसानों पर कर्ज का बोझ मर्ज का एक लक्षण मात्र है और इसकी असल जड़ कुछ और है। किसानों की दुर्दशा के कई बुनियादी कारण है जिनमें सिकुड़ती जोत का आकार, मिट्टी की घटती उर्वर क्षमता, गिरता जलस्तर, खेती की लागत में इजाफा। इसके अलावा कमजोर उत्पादकता और इन सबसे ऊपर मानसून की अनिश्चितता भी एक बड़ी समस्या है।

ऐसे में कर्ज माफी महज एक लक्षण का उपचार है और इससे रोग जड़ से नहीं मिट पाएगा।'लोकप्रियता की चाह' को लेकर नेताओं में बढ़ती प्रतिस्पर्धा का ही नतीजा है कि सरकारें किसानों की कर्ज माफी के लिए मजबूर होती हैं और किसानों की भलाई के लिए ऐसे कदम उठाने की दिशा में गंभीरता से पहल नहीं करतीं जिनसे वास्तव में किसानों का भला हो सके। कर्ज माफी का अर्थशास्त्र यही कहता है कि तत्कालिक स्तर पर कोई वैकल्पिक योजना बनाई जानी चाहिए। इस साल सभी राज्यों द्वारा प्रस्तावित कर्ज माफी के आंकड़ों को जोड़ा जाए तो यह तकरीबन तीन लाख करोड़ रुपये बैठता है। यह प्रस्तावित ग्रामीण सड़कों के लिए खर्च होने वाली राशि के 16 गुने के बराबर है। इतनी रकम से चार लाख वेयरहाउस यानी अन्न भंडार गृह बनाए जा सकते हैं या सिंचित जमीन के दायरे को 55 प्रतिशत अधिक बढ़ाया जा सकता है जो पिछले 60 वर्षों में हासिल उपलब्धि से बड़ी थाती होगी। पांच वर्षों में किसानों की आमदनी दोगुना करने का सरकारी लक्ष्य भली मंशा और दूरदर्शिता से परिपूर्ण है। हालांकि विभिन्न तबकों विशेषकर कृषि अर्थशास्त्रियों को इसके फलीभूत होने को लेकर तमाम आशंकाएं दिखती हैं। असल में आवश्यक वित्तीय संसाधन जुटाने में सरकार की संदिग्ध क्षमता और उससे भी बढ़कर योजना के सक्षम क्रियान्वयन के चलते उनका यह संदेह गहराता है। पिछले साठ वर्षों के दौरान केंद्र और राज्यों में सत्तारूढ़ रही विभिन्न सरकारों के रवैये से भी उनकी आशंकाओं को बल मिलता है।केंद्र सरकार द्वारा उठाए गए तमाम कदमों से यह संकेत मिलता है कि इस दिशा में व्यापक योजना बनाने के लिए गंभीर कोशिशें हो रही हैं। हालांकि इसकी सफलता काफी हद तक इस

पर निर्भर करेगी कि अगले पांच वर्षों में उन्हें अमल में लाने का जिम्मा किन्हें सौंपा जाता है और इसके लिए प्राथमिकताएं कैसे तय की जाती हैं? अफसोस की बात है कि कृषि को न तो केंद्र में और न ही राज्यों में आर्थिक मंत्रालयों का हिस्सा माना जाता है।नेतृत्व भी इसके लिए सबसे काबिल मंत्री नहीं तलाशता। उसकी नजर भी गृह, वित्त, रक्षा, परिवहन और वाणिज्य जैसे कुछ मंत्रालयों पर ही होती है। मंत्रिपरिषद में हुए हालिया फेरबदल में राष्ट्रीय मीडिया में कृषि मंत्रालय को लेकर ज्यादा सुगबुगाहट नहीं हुई जबकि इसे लेकर हफ्ते भर तक अटकलों का दौर चलता रहा। भारत की लगभग 60 फीसदी आबादी अपनी आजीविका और समृद्धि के लिए कृषि पर ही निर्भर है और अगर किसी को भारत के वंचित वर्ग और सभी की जरूरतों का इतना ही ख्याल है तो फिर ऐसी उदासीनता क्यों?कुछ कदम उठाकर किसानों की आमदनी को दोगुना बढ़ाने में मदद मिल सकती है, लेकिन इसके लिए यह सुनिश्चित करना होगा कि आरंभ से लेकर अंतिम बिंदु तक कोई कोताही न रह जाए। जिन उत्पादों के दम पर किसानों को 10 से 15 प्रतिशत अधिक खुदरा मूल्य हासिल हो सके उनका बेहतर तरीके से प्रबंधन होना चाहिए। इसके लिए तीन बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित करना होगा। सबसे पहले तो कृषि विपणन एवं उत्पाद समिति यानी एपीएमसी को खत्म कर उसके स्थान पर मांग और आपूर्ति के आधार पर उचित बाजार व्यवस्था बनाई जाए। दूसरा यह कि खेत से लेकर बाजार तक बेहतर सड़कें बनाई जाएं जिनसे हर मौसम में आवाजाही संभव हो सके। तीसरा यह कि प्रभावी आपूर्ति श्रंखला प्रबंधन के साथ गोदाम बनाएं। किसानों को बीज, उर्वरक और पानी की संगठित रूप से निर्बाध आपूर्ति सुनिश्चित की जाए। इसकी उचित निगरानी भी हो ताकि उनकी आपूर्ति से जुड़े निजी उद्यमी कीमतों में हेरफेर कर गैरवाजिब तरीके से मुनाफा न बना लें। उपलब्ध जल संसाधनों के उचित दोहन के लिए उनका सक्षम प्रबंधन हो। साथ ही नए जल स्रोतों और छिड़काव आधारित सक्षम सिंचाई विधि को प्रोत्साहन दिया जाए।

खेती का आधुनिकीकरण हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। एक तो छोटी जोतों का एकीकरण किया जाए। दूसरा मिट्टी की सेहत बेहतर बनाई जाए। तीसरा बीज से लेकर पैदावार तक की गुणवत्ता बढ़ाई जाए। किसान और ग्रामीण भारत तमाम कष्ट झेल चुका। सीएसओ और आरबीआइ द्वारा अन्य क्षेत्रों की की ही तरह कृषि की प्रगति रिपोर्ट भी हर तिमाही में जारी की जाए। इसका ब्योरा भी व्यापक होना चाहिए ताकि उस पर सार्थक बहस हो सके। इस पर होने वाली चर्चा से नौकरशाही का रवैया भी बदलेगा। भले ही जीडीपी में कृषि का योगदान महज 17 प्रतिशत हो, लेकिन इससे देश के 60 फीसद लोगों के सुख-दुख तय होते हैं। कर्ज माफी के महारथी शायद इस तथ्य से वाकिफ नहीं हैं कि ऐसे उपाय से किसानों और ग्रामीण भारत की क्रय शक्ति पर ग्रहण लग जाता है, क्योंकि उनके लिए नए कर्ज के रास्ते अमूमन बंद हो जाते हैं। उन्हें अपने विमर्श में बदलाव लाने की जरूरत है।

नईदुनिया

Date: 20-09-17

आर्थिक सुस्ती की फिक

संपादकीय

बेशक हाल में कुछ आर्थिक संकेत ऐसे मिले, जिन्हें सकारात्मक नहीं कहा जा सकता। इनमें सबसे ज्यादा चर्चित चालू वित्त वर्ष की पहली तिमाही में सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर का गिरकर 5.7 फीसदी तक चले जाना रहा। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक और चालू खाता घाटे के ताजा आंकड़े भी अच्छे नहीं रहे। जब ऐसी खबरें आती हैं, तो विपक्ष को सरकार पर निशाना साधने के बहाने मिलते हैं। जाहिर है, ऐसा माहौल बनाने की कोशिश हुई है, जैसे कोई बहुत बड़ा आर्थिक संकट खड़ा हो गया हो।विपक्ष ने इस कथित संकट के लिए केंद्र को दोषी ठहराया है। प्रचारित किया है कि एनडीए सरकार की नीतियां वर्तमान स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। खासकर नोटबंदी और वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) को लागू करने के तरीके को कठघरे में खड़ा करने की कोशिश हुई है। मसलन, पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा है कि देश के सकल घरेलू उत्पाद में मध्यम एवं लघु उद्योग क्षेत्र का हिस्सा 40 फीसदी है। ये दोनों क्षेत्र नोटबंदी और

जीएसटी के कथित दुष्प्रभावों से संकट में हैं। इसका असर जीडीपी वृद्धि दर पर दिख रहा है।बहरहाल, ऐसी नकारात्मक तस्वीर पेश करने की कोशिश में अर्थव्यवस्था से जुड़े **स्वस्थ** एवं सकारात्मक संकेतों की उपेक्षा कर दी गई है। जबकि हकीकत यह है कि शेयर सूचकांक बेहद ऊंचे स्तर पर बने हुए हैं, देश में **रिकॉर्ड** मात्रा में विदेशी मुद्रा आई है, डॉलर की तुलना में **रुपया** अपेक्षाकृत मजबूत बना हुआ है, और हाल में निर्यात बढ़ने के संकेत भी मिले हैं। इन फौरी पहलुओं के अलावा अगर **दीर्घकालिक** सूरत पर गौर करें, तो भारत का आर्थिक भविष्य सहज ही उज्ज्वल नजर आता है। भारत की सबसे बड़ी ताकत यहां की युवा आबादी है। जनसंख्या का ये हिस्सा एक ऐसे बाजार का आधार है, जो लंबे समय तक अधिक उत्पादन, बिक्री और मुनाफे का स्रोत बना रहेगा। दरअसल, नोटबंदी और जीएसटी को लागू करके भी सरकार ने आर्थिक खुशहाली का आधार मजबूत किया है। जीएसटी से आगे चलकर कारोबार करना आसान होगा।

नोटबंदी से स्वच्छ अर्थव्यवस्था का मार्ग **प्रशस्त** हुआ है। इससे देशी-विदेशी निवेशकों का भरोसा बढ़ेगा। यानी समग्रता में देखें तो मायूसी की कोई बात नजर नहीं आती। इसके बावजूद जहां कमजोरी दिख रही है, उसे दुरुस्त करने के कदम फौरन उठाए जाने चाहिए। संतोष की बात है कि केंद्र इसको लेकर जागरूक है। वित्त मंत्री अरुण जेटली कह चुके हैं कि हालात पर सरकार की नजर है और आर्थिक स्थितियां पूरी तरह नियंत्रण में **हैं**। फिर भी सरकार से उम्मीद है कि वह ऐसे प्रभावी कदम उठाए, जिससे तात्कालिक चिंताओं का भी निवारण हो सके। तब विपक्ष की रणनीति निराधार हो जाएगी। सरकार को आम लोगों की दिक्कतों की चिंता अवश्य करनी चाहिए। अधिक टैक्स के कारण पेट्रोल-डीजल की महंगाई आम लोगों के बीच मुद्दा बन रही है। सरकार को इस पर ध्यान देना चाहिए। क्या आयकर व दूसरे करों में और कटौती संभव है, इस पर उसे विचार करना चाहिए। ऐसे कदमों से उपभोग बढ़ाने में मदद मिलेगी, जिससे अर्थव्यवस्था में नई गति आ सकती है।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 19-09-17

At the prison gates

Many states like Maharashtra now have 33 per cent reservation for women in prison administration: Their increased number means that they are assigned duties in male prisons too

Meeran Chadha Borwankar,The writer is director general, Bureau of Police Research and Development

Women now have a voice in the police. They are carrying out all types of duties — regulating traffic, managing control rooms, PCR vans, conducting night rounds, checking at nakabandi points and, above all, investigating serious crimes and supervising large bandobasts. They have come to symbolise a changing India that believes in empowered girls and women. Their uniform has inspired many more to join the police department leading to a powerful community within the service.Women managing prisons and correctional administration are unsung heroes. Their number is gradually increasing. From being wardens to jailers and deputies, women handle sensitive duties from managing prison gates, barracks, peripheral and internal security to sending inmates to courts and attending to judicial duties regarding prisoners.Many states like Maharashtra now have 33 per cent reservation for women in prison administration:

Their increased number means that they are assigned duties in male prisons too. Most of the 1,400 prisons in the country have a separate women's section with around 18,000 prisoners, according to the NCRB. There are 18 jails exclusively for women. Most prison superintendents are apprehensive of having

women staff. The assimilation of women officers in the male prison administration is a challenge that is yet to be surmounted.The nature of prison duties, hours of their shifts, are such that most of the staff stays near the prison. They form a community of their own. Many are second generation prison staff and steeped in a culture that has developed over time. It is definitely a male-dominated culture that broadly believes that prisons are places for the punishment for criminals and that the latter pose a risk to society. The security of prisons and counting of prisoners is their main occupation.The presence of women in prison administration requires that officers and staff of prisons are in sync with the culture of gender equality, respect and cooperation.

Women come with their own strengths — teamwork, participative management, communication skills etc. They also herald a shift in favour of a correctional administration instead of the traditional punitive mindset. The re-orientation of prison administration has thus become imperative.The Supreme Court has flagged this issue and that of training prison staff. It has tasked the Bureau of Police Research and Development to revise the existing syllabi for the training of prison officers/staff — a highly ignored area. After basic training during induction, there is hardly any in-service training. Training at regular intervals, linking it with promotions and updating technical knowledge deserve the attention of all state governments, since police and prisons are state subjects.

Last year, the Bureau established a micro-mission to deal with issues of prisons and correctional administration. Besides updating syllabi of basic training for prison administrators, there is a strong need for their reorientation towards correctional administration. Prison officers and staff need to veer towards an attitude of reformation and rehabilitation. The focus should shift from punitive to correctional.Prisons in most metros and district headquarters are over crowded. Mumbai's Arthur road Central prison is a classic example. The adverse effects on the hygiene and health of prisoners and the staff on duty can be imagined. Tuberculosis and skin diseases are rampant. The security risks are enormous. In this situation, relieving even one staff member for in-service training appears to be a luxury. Thus, besides regular training, filling around 34 per cent vacancies in prisons needs immediate attention. Women officers and around 4,400 staff working in these conditions have the extra burden of traditional family responsibilities. Their problems have not been studied or attended to.

What kind of challenges are uniformed women facing in prisons? What is their work satisfaction? What kind of duties can be allotted to them in the male prisons? Is their uniform gender-friendly? Are their working hours reasonable and conducive to a healthy family life? Discussions about possible solutions and engaging with them on continuous basis can help women in prison administration reach their potential. They can be equipped with professional expertise to ensure that incidents like the custodial death of Manjula Shete in Mumbai's Byculla prison do not occur. While prison administration as a whole needs attention, the issues of uniformed women in prison administration require a thorough review and follow-up action.

THE HINDU

Date: 19-09-17

A partisan ruling — on disqualification of dissident AIADMK MLAs

The disqualification of 18 MLAs in Tamil Nadu is highly questionable

EDITORIAL

The disqualification of 18 dissident AIADMK legislators by the Tamil Nadu Assembly Speaker is a partisan decision aimed at securing a majority for the seven-month-old Edappadi K. Palaniswami government after a rebellion reduced it to a minority. The Speaker's ruling comes at a time when there is an increasingly indefensible reluctance on the part of the Governor,Ch. Vidyasagar Rao, to order a floor test. It serves the political purpose of reducing the total membership of the House from 233 to 215 and, thereby, the majority threshold from 117 to 108. The disqualified legislators are loyalists of T.T.V. Dhinakaran, who heads a faction of the AIADMK opposed to the ruling dispensation controlled by Mr. Palaniswami and his Deputy Chief Minister O. Panneerselvam. The Speaker has interpreted their memorandum to the Governor expressing lack of confiidence in the Chief Minister as amounting to "voluntarily giving up" their party membership. The opposition Dravida Munnetra Kazhagam had feared precisely such a turn of events. It had voiced apprehensions that the Speaker may disqualify the dissidents ahead of a possible trust vote, leading to the Madras High Court directing that there should be no floor test until September 20. The Dhinakaran faction may not command much popular support, but that is no reason for the Speaker to act in a politically partisan manner and keep them out of the House to prevent them from voting against the government. There is a growing feeling that the present regime will stop at nothing to remain in office. The Governor's silence adds to the impression that the Centre is not averse to letting the regime go on, despite its apparent lack of numbers.

The Speaker's decision under the Tenth Schedule of the Constitution is subject to judicial review. If it is challenged, the courts will have to decide whether legislators withdrawing support to their own party's government amounts to voluntarily giving up their membership, a condition under which a member may be disqualified. The second condition is attracted only when a whip is disobeyed, but even then there is a provision for the party to condone such a breach. In *Balchandra L. Jarkiholi & Others v. B.S. Yeddyurappa* (2011), the Supreme Court, in similar circumstances, quashed the disqualification of 11 MLAs in Karnataka. Last year, the Supreme Court declined to intervene when some dissenters hobnobbing with the opposition were disqualified just ahead of Harish Rawat's confidence vote in Uttarakhand. In that case, the rebels had joined hands with the opposition in meeting the Governor, whereas there is no proven link between the AIADMK dissidents and the opposition in Tamil Nadu. While such legal and constitutional questions may be decided judicially, political morality has suffered another blow in the State. This government may survive a floor test in a truncated House, but at a cost to its legitimacy.

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 19-09-17

विकास का कद

संपादकीय

दोष हम अपने देश की अर्थव्यवस्था पर भी मढ़ सकते हैं, उसकी समाज-व्यवस्था पर भी और राजनीति के मत्थे दोष मढ़ना तो खैर सबसे आसान होता है। कुपोषण के कारण अगर देश के बच्चों का कद कम हो रहा है, तो यह सिर्फ आज की समस्या नहीं है, बल्कि एक ऐसी समस्या है, जो सीधे देश के भविष्य पर आघात कर रही है। इसलिए भी यह छोटी समस्या नहीं है कि देश के एक तिहाई से ज्यादा बच्चे इसका शिकार बन रहे हैं और बिहार जैसे राज्यों में तो यह आंकड़ा 50 फीसदी को छू रहा है। नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे-4 के अनुसार, इसमें गांव और शहर का फर्क नहीं है। कुपोषण और उसके बुरे नतीजे, दोनों ही जगह तकरीबन एक जैसे हैं। यह खबर हमें उस समय मिल रही है, जब हम यह मान बैठे हैं कि खाद्यान्न के मामले में देश पूरी तरह **आत्मनिर्भर** है। बावजूद इसके कि उसे आत्मनिर्भर बनाने वाली कृषि और किसानों की स्थिति ठीक नहीं है। हालांकि आत्मनिर्भरता के इस पूरे दौर में कुपोषण की समस्या ने देश को कभी अलविदा नहीं कहा और इसीलिए मानव विकास सूचकांक के पैमाने पर हम श्रीलंका व **पाकिस्तान** जैसे पड़ोसियों से कई मामलों में पीछे रहे हैं। बल्कि अविकसित देशों की फेहरिस्त में जगह पाने वाले कई देश भी इस मामले **में** हमसे आगे खड़े दिखाई देते हैं।

यह स्थिति तब है, जब हमारे अर्थशास्त्री यह बताते नहीं थकते कि आने वाले कई बरस तक हम दुनिया के सबसे ज्यादा युवा देशों में शुमार रहेंगे। सबसे बड़ी युवा आबादी हमारे पास होगी और इस युवा आबादी की उत्पादकता हमें विकासशील से विकसित देश में बदल देगी। लेकिन इस आकलन के साथ अब यह डर भी जुड़ गया है कि इस युवा आबादी का एक बड़ा हिस्सा कुपोषण के कारण अपनी बहुत सारी उत्पादक क्षमता बचपन में ही खो चुका होगा। और यह मामला सिर्फ उत्पादकता में कमी या आर्थिक लक्ष्यों से पीछे रह जाने भर का नहीं है। यह मामला एक ऐसे समाज की ओर बढ़ने का है, जहां एक बड़ा हिस्सा कुपोषण के नतीजों से त्रस्त तो होगा ही, साथ ही कई तरह के रोगों से भी जूझ रहा होगा। यह सर्वे हमें सिर्फ डराता ही नहीं, बल्कि अपने समाज के कई सच भी बताता है। जैसे मिड-डे मील योजना का सच। कुछ साल पहले बनी इस योजना से यह उम्मीद बांधी गई थी कि **स्कूलों** में चलाई जा रही इस योजना से न सिर्फ उनमें बच्चों की उपस्थिति बढ़ेगी, **बल्कि** इससे बच्चों को पर्याप्त पोषण भी मिलेगा। जाहिर है, अगर बच्चे फिर भी कुपोषित हैं, तो यह योजना अभी अपने लक्ष्यों से बहुत दूर है। हालांकि इसका समाधान मिड-डे मील योजना को **खत्म** करना नहीं, बल्कि इसके जरिये बच्चों को मिलने वाले पोषण को बढ़ाना ही हो सकता है।

परंपरागत सोच यही कहती है कि बच्चे किसी भी देश और समाज की तकदीर होते हैं, इसलिए बच्चों को कितना पोषण मिल रहा है, यह बताता है कि भविष्य को लेकर हम कितने गंभीर हैं। बेशक, इसमें यह जोड़ा जाना भी जरूरी है कि हमारे देश में अभी तक जो विकास हुआ है और हो रहा है, उसका लाभ सभी वर्गों को समान रूप से नहीं मिला है। आज भी देश का एक बड़ा वर्ग ऐसा है, जो अपने बच्चों को पर्याप्त पोषण दे पाने की स्थिति में भी नहीं है। वैसे यह मामला विकास की परिभाषा और उसका पैमाना बदलने का भी है। विकास को जीडीपी से नापने की बजाय अगर हम इस बात से नापें कि गरीब बच्चों की थाली में कितना भोजन और कितना पोषण पहुंच रहा है, तो इससे उन बच्चों और हमारे भविष्य का भला तो होगा ही, साथ ही विकास की पहुंच भी व्यापक बनेगी। तभी हम अपने विकास को सही अर्थों में समावेशी कह सकेंगे।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 19-09-17

विकास बनाम विस्थापन

संपादकीय

निर्माण काल से ही अनेक विवादों, विरोधों, **समर्थनों** और स्थगनों के झंझावात झेलते हुए सरदार सरोवर बांध अंतत: राष्ट्र को समर्पित हो गया। ‘‘बड़े काम करने में सहज आनंद पाने वाले’ प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 17 सितम्बर को विश्व का दूसरे सबसे बड़े बांध को देश को सुपुर्द किया। नर्मदा नदी पर 28 मिलियन एकड़ क्षेत्रफल में 138.68 मीटर ऊंचाई वाला यह बांध है, जिसकी गहराई 163 फीट है। अपने इस सरदार बांध से बस अमेरिका का ग्रैंड कुली डैम ही बड़ा है। भले मोदी ने अपनी तात्कालिक क्षेत्रीय राजनीति-दृष्टि से वल्लभ भाई पटेल का नाम लिया हो, लेकिन इसके **वास्तविक** स्वप्नद्रष्टा जवाहरलाल नेहरू थे, जिन्होंने 1946 में ही इसकी परिकल्पना कर ली थी। भले उन्होंने इसकी नींव 1961 के अप्रैल में पटेल के निधन के लगभग दशक बाद रखी।

दरअसल, भारी संयंत्र और बड़े बांध नेहरू के लिए ‘‘मंदिर’ थे, जो आधुनिक व आत्मनिर्भर भारत के उनके विचार से जुड़े थे। इसलिए गुजरात में नर्मदा के मुहाने उस जगह को बांध के लिए चुना गया था, जहां मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र संगम करते हैं। इन राज्यों के साथ-साथ राजस्थान के मरुस्थलों तक पेयजल, सिंचाई और बिजली देने की अति महत्त्वाकांक्षी योजना साकार की जानी थी। मोदी इसे ही अपने हिसाब से ‘‘न्यू इंडिया’ के अपने संकल्प से जोड़ते हैं। यहां भी नेहरू उनके अवचेतन में हैं। हालांकि ऐसा बहुहिताय बांध अपने निर्माण काल से मध्य प्रदेश और गुजरात के बीच भूमि की हिस्सेदारी व फायदों के वितरण को लेकर विवादित रहा।

नतीजतन आयोग पर आयोग बने। हालांकि अब सहभागी राज्यों के बीच फायदों का समुचित बंटवारा हो गया है। उम्मीद की जाती है कि बांध अपने लक्ष्य को पूरा करेगा। लेकिन इस ऐतिहासिक या नियंतण्र उपलब्धि की कड़ी कीमत का भी हमें अंदाजा होना चाहिए। सरदार बांध को बनवाने में हजारों-लाखों लोग अपनी जमीन से उजड़ गए हैं। 40,000 तो अब भी दर-बदर हैं। सरकार ने उनकी बसावट की बुनियादी जवाबदेही में घोर आपराधिक लापरवाही की है। एक टीन की छत उचित मुआवजा नहीं है। यही नर्मदा बचाओ आंदोलन के पैदा होने और उनके कंप-कंपा देने वाले **चरणबद्ध** जल सत्याग्रह का कारण बना, जो बांध के राष्ट्र के **सुपुर्द** होने की शाम तक जारी रहा। अब ऐसे में आंदोलन की नेता मेधा पाटकर व समर्थक अगर बांध को त्रासदी मानते हैं, तो यह देखना चाहिए कि विकास की हमारी अवधारणा एकपक्षीय तो नहीं है!